बैंकों की गैर-निष्पादक आस्तियों की वसूली में प्रयुक्त वैधानिक प्रयास

[मध्य प्रदेश के संदर्भ में]

*डॉ. ए.सी. जैन** डॉ. दीप्ति भूरिया

शोधपत्र-वाणिज्य विभाग

बैंकिंग परिदृश्य में सबसे कठिन कार्य ऋणों की वसूली को माना जाता है। बैंकों द्वारा प्रदान किये जाने वाले ऋण एवं अग्रिम बैंकों की समृद्धि का सूचक माने जाते हैं। चूँकि बैंकों द्वारा स्वीकृत ऋणों में अधिकाधिक भाग जमाकर्ताओं द्वारा जमा की गई राशि का होता है,।

'ऋण एवं अग्रिमों के 7 आधारभूत सिद्धांत माने गये हैं – 1. सुरक्षा, 2. तरलता, 3. लाभदायकता, 4. उद्देश्य, 5. प्रतिभूति, 6. संरक्षा का विस्तार, 7. राष्ट्रीय प्रयोजन।'[1] इन सिद्धांतों का प्रत्येक बैंक द्वारा ऋण स्वीकृति के पूर्व ध्यान रखना अनिवार्य होता है इस महत्वपूर्ण कार्य में हुई असावधानी अथवा अनियमितता गैर–निष्पादक आस्तियों को जन्म देती है। गैर–निष्पादक आस्तियाँ बैंकों द्वारा प्रदान किये गये ऋणों का वह भाग होती हैं जिनकी प्राप्ति निर्धारित समयावधि में नहीं हो सकी है। वर्ष 1985–86 में बैंक ऋणों को "सम्पत्ति वर्गीकरण प्रणाली" के आधार पर 'हैल्थ कोड' संतोषजनक, अनियमित, रुग्ण, स्मरणीय अग्रिम, उपयुक्त नस्तीबद्व खाते, वैधानिक ऋण तथा अशोध्य ऋण में विभाजित किया गया।[2] वर्ष 1991 में एम. नरसिंहम की अध्यक्षता में एक समिति की गठन किया गया। इस समिति की सिफारिशों के आधार पर वर्ष 1992–93 में ऋणों का चार वर्गों मानक, मानकेत्तर, संदिग्ध तथा हानिग्रस्त में वर्गीकृत किया गया भारतीय बैंकिंग परिप्रेक्ष्य में ऋणों की वसूली की विभिन्न विधियों को वैधानिक तथा गैर–विधिक प्रयास में वर्गीकृत किया गया है। बैंकों द्वारा किये जाने वाले कुछ प्रमुख वैधानिक प्रयास इस प्रकार हैं–

बैंक एवं अन्य वित्तीय संस्थाओं का ऋण वसूली अधिनियम, 1993 : इस अधिनियम को 24 जून 1993 को एक अध्यादेश के रूप में जारी किया गया[3] तथा 27 अगस्त 1993 को इस पर स्वीकृति प्रदान की गई। इसी दिन इसे सूचना रूप में भारत सरकार के गजट में भी प्रकाशित किया गया। यह अधिनियम जम्मू एवं कश्मीर को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में लागू है। इस अधिनियम के अंतर्गत ऋण वसूली न्यायाधिकरण तथा अपीलेट ट्रिब्यूनल स्थापित किये गये हैं, इनमें 10 लाख रुपये से अधिक राशि के मामलों की सुनवाई की जाती है।

रेवेन्यू रिकवरी सर्टिफिकेट :

मध्यप्रदेश में बैंकों के बढ़ते विस्तार तथा उनमें विनियोजित की जाने वाली राशियों में वृद्धि को देखते हुये मध्यप्रदेश सरकार द्वारा 'मध्यप्रदेश लोक धन (शोध्य राशियों की वसूली) अधिनियम, 1987 का प्रारंभ किया गया।[4] इसका प्रमुख उद्देश्य मध्यप्रदेश के आर्थिक विकास में बैंकों के योगदान को बढ़ावा देना है। इसी संदर्भ में बैंक द्वारा स्वयं के न वसूल हुये ऋणों हेतु रेवेन्यू रिकवरी सर्टिफिकेट्स दाखिल किये जाते हैं दाखिल किये गये सर्टिफिकेट्स पर तहसीलदार द्वारा रसीद दी जाती है । ऋण की वसूली होने पर बैंकों को सूचित किया जाता है। मध्यप्रदेश में रेवेन्यू रिकवरी सर्टिफिकेट्स के संदर्भ में राष्ट्रीयकृत बैंकों की स्थिति इस प्रकार है :– तालिका के अनुसार मध्यप्रदेश के राष्ट्रीयकृत बैंकों में लम्बित रेवेन्यू रिकवरी सर्टिफिकेट्स की संख्या 31 मार्च 2005 से 31 मार्च 2008 के मध्य 1516834 थी। इनमें 5 वर्ष तक के सर्टिफिकेट्स का प्रतिशत 51.12 था तथा शेष 48.88 प्रतिशत सर्टिफिकेट्स 5 वर्ष से अधिक अवधि के थे। इन सर्टिफिकेट्स के संदर्भ में चिंताजनक तथ्य यह रहा कि केवल 31 मार्च 2006 को इनमें 69810 की कमी हुई, परंतु 31 मार्च 2007 व 31 मार्च 2008 को क्रमशः 84913 व 3974 की वृद्धि दर्ज की गई। तालिका के अनुसार 5 वर्ष तक तथा उससे अधिक की अवधि से लंबित रिवेन्यू रिकवरी सर्टिफिकेट्स की राशि क्रमशः 1908.37 करोड़ तथा 1084.97 करोड़ रूपये थी, जबकि 31 मार्च 2005 से 31 मार्च 2008 के मध्य इनकी कुल राशि 20993.33 करोड़ रूपये रही। इस राशि में सभी वर्षों का प्रतिशत क्रमशः 26.18, 23.47, 24. 10 तथा 26.26 आंका गया। इतनी बड़ी राशि का लंबित होना बैंकों के लिए निश्चित ही विचारणीय तथ्य है।

* विभागाध्यक्ष वाणिज्य विभाग, शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, सागर
** अतिथि व्याख्याता, वाणिज्य विभाग, सर हरीसिंह गौर महाविद्यालय, सागर

तालिका क्र.1

मध्यप्रदेश के राष्ट्रीयकृत बैंकों में लम्बित रेवेन्यू रिकवरी सर्टिफिकेट्स की स्थिति

क्र.	वर्ष	लम्बित अवधि		कुल
		5 वर्ष तक	5वर्ष से अधिक	
1.	31.03.05	187025	201091	388116
2.	31.03.06	128495	189811	318306
3.	31.03.07	198750	204469	403219
4.	31.03.08	261154	146039	407193

(स्रोत : अग्रणी बैंक क्षेत्रीय कार्यालय, सेन्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया, भोपाल, पृ.78,103, 67 एवं 73)

तालिका क्र. 2

मध्यप्रदेश के राष्ट्रीयकृत बैंकों में विभिन्न वर्षों में रेवेन्यू रिकवरी सर्टिफिकेट्स के अंतर्गत शामिल राशि की स्थिति

(राशि करोड़ रूपये में)

क्र.	वर्ष	लम्बित अवधि		कुल
		5 वर्ष तक	5 वर्ष से अधिक	
1	31.03.05	507.60	275.80	783.40
2	31.03.06	423.52	278.81	70233
3	31.03.07	430.98	290.70	72168
4	31.03.08	546.26	239.66	78592

(स्रोतः अग्रणी बैंक क्षेत्रीय कार्यालय, सेन्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया, भोपाल, पृ. 78,103,67 एवं 73)

कानूनी नोटिस : जब वार्ता के पश्चात् भी बैंक को राशि वसूल करने में सफलता प्राप्त नहीं होती है तो बैंक उसे कानूनी नोटिस भेज सकता है।

लोक अदालत : लोक अदालत एक कम अवधि में ऋण वसूली का उपयुक्त माध्यम है। 'लोक अदालत की मूल अवधारणा यह है कि किसी भी मामले को न्यायिक प्रक्रिया की अपेक्षा सामान्य वार्ता के माध्यम से हल करना अधिक लाभप्रद होता है।लोक अदालतों को न्यायालय से पूरी मान्यता प्राप्त है। सम्पूर्ण प्रक्रिया में किसी भी प्रकार की फीस के भुगतान की आवश्यकता नहीं होती है जो कि छोटे ऋणियों की दृष्टि से उत्तम है। 'इन अदालतों में 5 लाख रुपये तक के मामलों का निपटारा होता है।[6]

लाभ प्रत्यावर्तन कानून 2002 : जब ऋण वसूली न्यायाधिकरणों की स्थापना की गई तो बैंक व अन्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा अपने वादों को वहीं दाखिल करने का प्रयास किया जाने लगा। ऐसी स्थिति में अधिक भार से उनका कार्य प्रभावित होते देखकर संसद द्वारा वर्ष 2002 में एक कानून लागू किया गया जिसे 'वित्तीय सम्पत्तियों का प्रतिभूतिकरण व पुनर्गठन तथा प्रतिभूति लाभ प्रत्यावर्तन कानून 2002' कहा गया।[7] इसे लेनदारों तथा बैंक की ऋण वसूली प्रक्रिया में आई बाधाओं को दूर करने के उद्देश्य से प्रारंभ किया गया।[7]

सिविल कोर्ट : बैंकों के ऋण खाते कभी–कभी आपातकालीन स्थिति में आ जाते हैं। इस स्थिति के उपाय के रूप में सिविल कोर्ट एक उचित विधि है। इसके अंतर्गत वाद सम्पूर्ण राशि हेतु ही दाखिल किया जा सकता हैं। सिविल वाद की प्रक्रिया का प्रारंभ सम्मन से होता है जो ऋणी/बचावकर्ता को कोर्ट द्वारा भेजा जाता है।[8] इसके पश्चात् ऋणी द्वारा अपने बचाव में कोर्ट को पत्र भेजा जाता है जिसके जबाव में वादी द्वारा बचावकर्ता के प्रश्नों का उत्तर दिया जाता है। इस अवधि में यदि वादी तथा बचावकर्ता किसी विषय पर सहमत हों तो समझौता भी हो जाता है। अन्त में न्यायालय निर्णय देता है उदाहरण के लिये ऋणी के वेतन में से समझौता, डिक्री, बहुत कठिन परिस्थितियाँ होने पर ऋणी को बंदी बनाने का आदेश भी दिया जा सकता है। वैधानिक प्रयासों के अतिरिक्त बैंकों द्वारा ऋणों की वसूली हेतु गैर–वैधानिक प्रयास भी किये जाते हैं, जिनमें देनदार से संपर्क, समझौता–निपटान, प्रतिभूतिकरण, रूग्ण इकाईयों का पुर्नवास आदि को सम्मिलित किया जाता है। यद्यपि बैंकों द्वारा ऋण वसूली हेतु प्रत्येक संभव प्रयास किये जाते हैं। परंतु एक प्रमुख समस्या प्रयासों के चयन की भी है।ऋण वसूली की किसी भी विधि के प्रयोग के पूर्व यह ध्यान रखना भी अनिवार्य होता है कि किस प्रकार के मामलों में कौन–सी विधि उपयुक्त होगी। कम राशि वाले मामलों में लोक अदालत, समझौता निपटान जैसी विधियों का प्रयोग किया जा सकता है, जबकि बड़ी राशि वाले मामलों में ऋण वसूली न्यायाधिकरणों में वाद दाखिल करना अधिक उचित होता है। प्रारंभिक प्रयास के रूप में गैर विधिक माध्यमों का प्रयोग करना चाहिये ताकि न्यायिक प्रक्रिया में बैंक का समय व धन व्यर्थ न हो परन्तु जैसे ही गैर विधिक प्रयासों की सफलता संदिग्ध लगने लगे तो शीघ्रातिशीघ्र वैधानिक उपायों की ओर ध्यान दिया जाना चाहिये।गैर–निष्पादक राशियाँ जितने वृहत् रूप में बैंक में विद्यमान रहेंगी बैंक उतना शीघ्र पतन की ओर अग्रसर होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1.SubramanianG.: SBI Group Promotional Exams. Banking Guide, J.S. Institute of Banking and Careers, Bangalore (1991), p.2-1-1. 2. Ram Pratap Sinha, "Asset Composition and NPA Profile of Indian Commercial Banks, Business Perspectives (Jan.-Mar., 2005), p. 25-44. 3 मित्तल डी.के. : बैंक बकायों की वसूली एवं ऋण वसूली न्यायाधिकरण, बैंकिंग चिंतन–अनुचिंतन, बैंकर प्रशिक्षण महाविद्यालय (अप्रैल–जून 2006), पृ.33–34. 4 Everlatest in Banking : State Bank of India Officer's Association, Bhopal Circle, Diwakar Prin ters & Publishers, Bhopal (2001), p.7-440 5 Subramanian G. : SBI Group Promotional Exams. Banking Guide, J.S. Institute of Banking and Careers, Bangalore, 1999, p. 2-4-27 6 टण्डन रविनाथ : बैंकों की ऋण वसूली, बैंकिंग चिंतन–अनुचिंतन, (जन.–मार्च 2005), पृ. 28–33. 7 Sharma K.C. : Insolvency Under Indian Law : What are the options for banks as secured creditors, The Indian Banker, Indian Banks' Association (April 2007), p.21-27. 8 Everlatest in Banking : State Bank of India Officer's Association, Bhopal Circle, Diwakar Prin ters & Publishers, Bhopal (2001), p. 7-428.